

न्यायमूर्ति एम. एम. पुंछी के समक्ष

जेठा नंद-याचिकाकर्ता

बनाम

हरियाणा राज्य-प्रतिवादी

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 42/1981

12 अप्रैल 1982.

दंड प्रक्रिया संहिता (1974 का द्वितीय)-धारा 239, 386 और 401-भारतीय दंड संहिता (1860 का एक्सएलवी)-धारा 420, 467, 468 और 471-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 और 471 के तहत अपराध के लिए मुकदमे के लिए भेजा गया-केवल धारा 420 के तहत आरोप तय किया गया और आरोपी को अन्य अपराधों से मुक्त कर दिया गया- सेवामुक्ति के आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती नहीं दी गई-आरोपी को धारा 420 के तहत दोषी ठहराया गया, दोषसिद्धि के खिलाफ अपील स्वीकार की गई और आईपीसी की धारा 467 के तहत नए आरोप तय होने के बाद आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने का आदेश दिया गया -अपीलीय न्यायालय-क्या आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के तहत इस तरह के पुनः परीक्षण का आदेश दे सकता है।

यह अभिनिर्णीत किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 386 एक ओर दोषमुक्ति के आदेश की अपील से संबंधित है और दूसरी ओर दोषसिद्धि की अपील से संबंधित है। जबकि

दोषसिद्धि से अपील में, अपीलीय न्यायालय को निष्कर्ष और सजा को छूना आवश्यक है; दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में न्यायालय के पास कोई निष्कर्ष या सजा नहीं है, केवल दोषमुक्ति के आदेश को पलटना है और उसके बाद न्यायालय के पास आरोपी को दोषी ठहराने और उसे कानून के अनुसार सजा देने या आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने या उसे इस उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध करने का आदेश देने का विकल्प होता है। न्यायालय के पास एक अन्य विकल्प आगे की जांच करने का निर्देश देना है। संदर्भ में पूछताछ का मतलब किसी मजिस्ट्रेट या न्यायालय (संहिता की धारा 2(जी)) द्वारा संहिता के तहत आयोजित मुकदमे के अलावा हर जांच से है। इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ अपील में, अपीलीय अदालत कार्यवाही को प्री-ट्रायल चरण में और जाहिर तौर पर आरोप तय करने से पहले के चरण में, लेकिन पुलिस रिपोर्ट दर्ज होने के बाद कर सकती है। दोषसिद्धि की अपील में न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है। किसी दोषसिद्धि की अपील के संदर्भ में अपीलीय अदालत जो पुनः विचारण आदेश पारित कर सकती है, वह उसी अपराध के लिए पुनः विचारण है जिसके लिए अभियुक्त को दोषी ठहराया गया था, न कि किसी अन्य के लिए, क्योंकि अपीलीय न्यायालय के लिए यह मानना गलत होगा कि संपूर्ण मामला इसके सामने है, जब यह दोषसिद्धि के खिलाफ अपील पर विचार करता है, तो इसमें केवल दोषसिद्धि के खिलाफ अपील होती है, दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील नहीं होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के प्रयोजनों के लिए उसके समक्ष पूरे मामले की कार्यवाही की जा रही है और इसके तहत उच्च न्यायालय और साथ ही सत्र न्यायालय को दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि में बदलने से रोक दिया गया है। इसलिए, यह माना जाता है कि एक अपीलीय अदालत एक अपराध के तहत दोषसिद्धि की अपील को बरी करने के आदेश में समाप्त करते समय एक साथ दूसरे अपराध के लिए आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने का आदेश नहीं दे सकती है।

(पैरा 7 और 8)

श्री कृष्णकांत अग्रवाल, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गुड़गांव के 15 नवंबर, 1980 के आदेश की समीक्षा के लिए याचिका, जिसमें श्री बी.एल. सिंघल, जे.एम.आई.सी. बल्लबगढ़ द्वारा पारित 12 जून, 1975 के फैसले को रद्द करते हुए मामले को वापस ट्रायल कोर्ट में भेज दिया गया था।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता सी डी दीवान, ए.एस. चड्ढा और रमेश पुरी।

बी.के. झिंगन, ए.जी. हरियाणा के वकील, प्रतिवादी के पक्ष में।

## निर्णय

एम. एम. पुंछी, न्यायमूर्ति

(1) क्या आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार की अदालत, एक अपराध के तहत दोषसिद्धि की अपील को बरी करने के आदेश में समाप्त करते हुए, साथ ही साथ दूसरे अपराध के लिए आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाने का आदेश दे सकती है, यह पेचीदा सवाल है जो पुनरीक्षण के लिए इस याचिका में निर्धारण के लिए आता है और यह आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के संदर्भ से उत्पन्न होता है, जिसका प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:-

“386. अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ.-

इस तरह के रिकॉर्ड का पालन करने और अपीलकर्ता या उसके वकील को सुनने के बाद, यदि वह उपस्थित होता है, और लोक अभियोजक यदि वह उपस्थित होता है, और धारा 377 या धारा 378 के तहत अपील के मामले में, यदि आरोपी उपस्थित होता है, तो अपीलीय न्यायालय, यदि वह मानता है कि हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, अपील खारिज कर सकता है, या-

(ए) दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील में, ऐसे आदेश को उलट दें और निर्देश दें कि आगे की जांच की जाए या कि जैसा भी मामला हो, आरोपी पर दोबारा मुकदमा चलाया जाए या उसे ट्रायल के लिए प्रतिबद्ध किया जाए, या उसे दोषी पाया जाए और कानून के अनुसार उसे सजा दी जाए;

(बी) किसी दोषसिद्धि की अपील में-

(i) निष्कर्ष और सजा को उलट दिया जाएगा और आरोपी को बरी कर दिया जाएगा या छुट्टी दे दी जाएगी, या उस पर ऐसे अपीलीय न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पुनः मुकदमा चलाए जाने का आदेश देगा या मुकदमा चलाने के लिए प्रतिबद्ध करेगा; या

(ii) सजा को बरकरार रखते हुए निष्कर्ष को बदलना; या

(iii) निष्कर्ष में परिवर्तन के साथ या उसके बिना, प्रकृति या सीमा में परिवर्तन करना, या सजा की प्रकृति और सीमा, लेकिन उसे बढ़ाने के लिए नहीं;

(2) धारा 173, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत एक पुलिस रिपोर्ट, क्षेत्र के न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, पलवल को प्रस्तुत की गई, जिसमें आरोपी जेठा नंद और एक अन्य पर भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 461 और 471 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया। उसमें शामिल आरोप उन तथ्यों पर आधारित थे जिन्हें यहां मोटे तौर पर बताया जा सकता है। राम चंद मोटवानी नामक व्यक्ति आरोपी जेठा नंद और तीन अन्य के बकाया 35,000 ऋण के भुगतान के लिए जमानतदार बना। जमानत बांड की शर्तों में से एक यह थी कि उक्त ऋण का भुगतान न करने की स्थिति में, जमानतदार राम चंद मोटवानी एन.आई.टी. फ़रीदाबाद में स्थित कुछ भूखंड कुल बिक्री पर रु. 40,000 में बेच देंगे, और जिस पर उन्होंने सहमति व्यक्त की थी। 24 जुलाई 1972 को राम चंद मोटवानी की मृत्यु हो गई और उनकी संपत्ति का उत्तराधिकार उनकी विधवा श्रीमती कृष्णा देवी को मिला। 6 फरवरी, 1973 को, एक विक्रय विलेख निष्पादित और पंजीकृत किया गया, जिसके तहत एन.आई.टी. में उपरोक्त दो भूखंडों को सूचीबद्ध किया गया। फ़रीदाबाद को जेठा नंद और तीन अन्य के पक्ष में 40,000 रुपये की राशि में बेचा गया। आरोपी जेठा नंद ने विक्रेता की ओर से इस पर हस्ताक्षर किए। सह-अभियुक्त सौदागर सिंह ने गवाह के रूप में इस पर हस्ताक्षर किए और श्री सी.एल. तनेजा, वकील, बल्लभगढ़ ने भी हस्ताक्षर किए। विक्रय पत्र के इन दो गवाहों ने विक्रेता श्रीमती की पहचान की। कृष्णा देवी, जिन्होंने निष्पादक के रूप में अंगूठा लगाया था और उप-रजिस्ट्रार के समक्ष भी ऐसा किया था। बाद में, श्रीमती. कृष्णा देवी ने पुलिस अधिकारियों से शिकायत की कि किसी ने उसके साथ धोखाधड़ी की है और वास्तव में उसने कभी कोई विक्रय पत्र निष्पादित नहीं किया है। यह शिकायत करते हुए कि उसे संबंधित भूखंडों के स्वामित्व से वंचित कर दिया गया है, वह चाहती थी कि जांच प्रक्रिया को गति दी जाए। तदनुसार, पुलिस ने मामला दर्ज किया और जांच शुरू कर दी। पुलिस को यह पता नहीं

चला कि वह महिला कौन थी जो सब-रजिस्ट्रार के सामने पेश हुई थी, हालांकि आरोपी इस बात पर अड़े थे कि वह श्रीमती कृष्णा देवी और कोई नहीं थीं। अंत में, अभियोजन पक्ष ने उपरोक्त अपराधों को अंजाम देने के लिए आरोपी जेठा नंद और उसके सह-अभियुक्त सौदागर सिंह के खिलाफ अपनी रिपोर्ट पेश की। श्री एल.एन.मित्तल, उप-विभागीय न्यायिक मजिस्ट्रेट, बल्लभगढ़ ने अपने तर्कसंगत आदेश दिनांक 12 जून, 1975 द्वारा आरोपियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 468 और 471 के तहत अपराध से मुक्त कर दिया, और धारा 420, भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप लगाने का आदेश दिया। दोनों आरोपियों के खिलाफ अलग-अलग आरोप तय किए जाएंगे। मुकदमे के बाद, उनके उत्तराधिकारी श्री बी.एल. सिंघल, न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, बल्लभगढ़ ने आरोपी सौदागर सिंह को बरी कर दिया, लेकिन आरोपी-याचिकाकर्ता जेठा नंद को भारतीय दंड संहिता की धारा 419 के तहत दोषी ठहराया और उसे दो साल के कठोर कारावास और 500 रुपये का जुर्माना भरने की सजा सुनाई। उक्त आदेश के खिलाफ व्यथित, याचिकाकर्ता जेठा नंद ने अपनी सजा के खिलाफ अपील दायर की, जिसे 15 नवंबर, 1980 को श्री कृष्ण के अंत अग्रवाल, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गुड़गांव द्वारा अनुमति दी गई थी। उन्होंने माधवन अय्यप्पन बनाम राज्य और अन्य मामले में एक निर्णय के बाद यह विचार रखा, जिसे उन्होंने तथ्यों के आधार पर समान मामला पाया। फिर भी, विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें आरोपी को गलत धारा के तहत उसके खिलाफ आरोप तय करने की तकनीकीताओं का लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह देखते हुए कि आरोपी ने विक्रय पत्र प्राप्त करने में सक्रिय रूप से भाग लिया था, एक्ज़िबिट पीए ने अपने पक्ष में निष्पादित किया, साथ ही उक्त विक्रय पत्र को सत्यापित किया और काल्पनिक कृष्णा देवी के साथ उस पर अपने हस्ताक्षर जोड़कर उप-रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित हुए, धारा 467 के तहत अपराध आरोपी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा बनाई गई। इस प्रकार, अपील को स्वीकार करते हुए और

भारतीय दंड संहिता की धारा 419 के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को रद्द करते हुए, उन्होंने आदेश दिया कि अपीलकर्ता पर भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के तहत एक नए आरोप पर मुकदमा चलाया जाए, जिसे विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा तय किया जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि फाइल पर पहले से मौजूद सबूतों को मामले में सबूत के रूप में माना जाएगा, बशर्ते कि आरोपी आगे की जिरह के लिए पहले से जांचे गए अभियोजन पक्ष के गवाहों को वापस बुलाने का अनुरोध करने के लिए स्वतंत्र होगा। परिणामी आदेश, जो उन्होंने उचित समझा, पारित कर दिए गए, जिनका विवरण यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। इस आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता जेठा नंद द्वारा वर्तमान पुनरीक्षण याचिका दायर की गई है।

(3) कानूनी सवाल पर पहुंचने से पहले एक तथ्य जो प्रासंगिक रूप से उभरकर सामने आया है, उस पर गौर करना जरूरी है। पुनरीक्षण आदेश में कहीं भी विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने ट्रायल मजिस्ट्रेट द्वारा पारित 12 जून, 1975 के डिस्चार्ज आदेश का उल्लेख नहीं किया। जैसा कि पहले कहा गया है, यह आदेश तर्कसंगत था और इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के मद्देनजर तर्कसंगत बनाया जाना था, जो अब मजिस्ट्रेट के लिए आरोपी को आरोपमुक्त करने के कारणों को रिकॉर्ड करना अनिवार्य बनाता है। विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में पुरानी संहिता की धारा 251-ए (2) में बदलाव के उद्देश्य और कारण बताते हुए कहा था कि चूंकि मजिस्ट्रेट का आदेश संशोधन के अधीन था। जाहिर तौर पर यह जरूरी था कि वह आदेश में अपने कारण दर्ज करें। तदनुसार, विधि आयोग द्वारा जिस बदलाव की सिफारिश की गई थी, उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 में स्पष्ट शब्दों के माध्यम से खोजा गया। आरोपमुक्त करने के आदेश के खिलाफ कोई पुनरीक्षण दायर नहीं किया गया और अभियोजन पक्ष लगभग पांच वर्षों तक भारतीय दंड

संहिता की धारा 420 के तहत आरोपी के खिलाफ कार्यवाही से संतुष्ट रहा, जब आरोपी को 25 मार्च, 1980 को उस अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था।

(4) धारा 386, आपराधिक प्रक्रिया संहिता का भाग, जो पहले निकाला गया था, एक ओर दोषमुक्ति के आदेश की अपील से संबंधित है और दूसरी ओर दोषसिद्धि की अपील से संबंधित है। कहने की जरूरत नहीं है कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष अपील दोषसिद्धि के खिलाफ अपील थी, न कि दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील। दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील भी उसके समक्ष नहीं की जा सकती। इस प्रकार वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के भाग (बी) में संहिता द्वारा प्रदत्त अपनी शक्तियों तक ही सीमित था। जाहिर तौर पर, उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 419 के तहत निष्कर्ष और सजा को उलट दिया है और आरोपी को बरी कर दिया है। उन्होंने अभियुक्तों पर दोबारा मुकदमा चलाने या मुकदमा चलाने का आदेश नहीं दिया है। यहां तक कि उसने निष्कर्ष में बदलाव के साथ या उसके बिना सजा या उसकी प्रकृति और सीमा को बनाए रखा या कम नहीं किया है। उन्होंने केवल उन तथ्यों पर निष्कर्ष को बदल दिया है जिनके आधार पर आरोपी/याचिकाकर्ता को बरी कर दिया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के तहत नए सिरे से आरोप तय करने का आदेश दिया है। अब क्या इस स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के तहत ऐसा किया जा सकता है, यह यक्ष प्रश्न है।

(5) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री सी.डी. दीवान ने आंध्र प्रदेश राज्य बनाम थाडी नारायण पर दृढ़ भरोसा जताया जिसमें संहिता की धारा 423(1)(बी)(i) और (ii) का दायरा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 को स्पष्ट किया गया था और उसमें यह माना गया था कि अभिव्यक्ति "निष्कर्ष को बदलें" का केवल एक ही अर्थ है और वह था "सजा के निष्कर्ष को बदलें न कि



दोषमुक्ति के निष्कर्ष को बदलें"। उसमें यह माना गया था कि धारा 423(1)(बी) द्वारा प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय बरी को दोषसिद्धि में परिवर्तित नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 में निर्धारित प्रक्रिया को अपनाकर किया जा सकता है और इसी तरह महाराष्ट्र राज्य बनाम श्रीराम और अन्य मामले में बॉम्बे हाई कोर्ट की एकल पीठ के फैसले पर भरोसा किया गया था, जिसमें कहा गया था कि यदि अपीलीय अदालत पुनः सुनवाई का निर्देश देती है, तो आरोप तय करना और पुनः सुनवाई केवल उन आरोपों के लिए हो सकती है जिनके लिए आरोपी को दोषी ठहराया गया था, न कि आरोपों से बरी किया गया था। इसमें यह पाया गया कि यदि यह निर्माण नहीं है, तो अभियुक्त केवल अपनी सजा के खिलाफ अपील करके दोहरे खतरे में पड़ जाएगा क्योंकि अपील दायर करने से उसे उसी मामले में एक बार फिर से मुकदमा चलाए जाने का जोखिम उठाना पड़ेगा। एक अपील सक्षम रूप से दर्ज की गई।

(6) दूसरी ओर, मटुकधारी सिंह और अन्य बनाम जनार्दन प्रसाद पर भरोसा करते हुए राज्य के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि यदि मजिस्ट्रेट उन अपराधों को नजरअंदाज कर देता है जिन पर उसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और उन अपराधों के आरोपी पर मुकदमा चलाने का विकल्प चुनता है जिन पर उसने मुकदमा चलाया है। क्षेत्राधिकार, तब 1898 की संहिता की धारा 417 (3) के तहत बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील की सुनवाई करते समय, उच्च न्यायालय मजिस्ट्रेट को उस अपराध के लिए आरोप तय करने का निर्देश दे सकता है जो सबूतों द्वारा प्रथम दृष्टया स्थापित किया गया हो और यह भी आदेश दे सकता है कि आरोपी को मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध किया जाए। उस मामले में, यह माना गया कि यदि मामले के न्यायाधीश ने स्पष्ट रूप से इस तरह के पाठ्यक्रम की मांग की, तो उच्च न्यायालय के पास बरी करने के आदेश को रद्द

करने और पुनर्विचार का आदेश देने का अधिकार क्षेत्र था। राजेश्वर प्रसाद मिश्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य के आधार पर यह भी तर्क दिया गया कि दोनों प्रकार की अपीलों के निपटान में अपीलीय न्यायालय की शक्ति मूल रूप से एक ही है, हालांकि संहिता में अलग से दर्शाया गया है और अपीलीय न्यायालय को विभिन्न मामलों से उचित तरीके से निपटने के लिए व्यापक विवेकाधिकार दिया गया था।

(7) यह ध्यान देने योग्य है कि थाडी नारायणा का मामला दोषसिद्धि की अपील के संदर्भ में और मटुकधारी सिंह का मामला बरी किए जाने के खिलाफ अपील के संदर्भ में सामने आया। जबकि पहले संदर्भित मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने आधिकारिक तौर पर कहा था कि दोषसिद्धि से अपील में, उच्च न्यायालय दोषसिद्धि के निष्कर्ष को बदल सकता है, न कि बरी करने के निष्कर्ष को, लेकिन दूसरे संदर्भित मामले में, उसने माना कि इसके खिलाफ अपील में बरी होने पर, उच्च न्यायालय ट्रायल कोर्ट को उस अपराध के लिए आरोप तय करने का निर्देश दे सकता है जो साक्ष्य द्वारा प्रथम दृष्टया स्थापित किया गया था और यह भी आदेश दे सकता है कि आरोपी को दोषी ठहराया जाए। इसी बल पर राज्य के विद्वान वकील का तर्क है कि एक अपीलीय अदालत बरी किए जाने के आदेश के खिलाफ अपील में जो कर सकती है, वह दोषसिद्धि के खिलाफ अपील में भी वही कर सकती है, क्योंकि किसी भी मामले में, अदालत को बदलाव करना होगा। आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के भाग (ए) और (बी) को तुलनात्मक रूप से पढ़ने पर तर्क की भांति ध्यान देने योग्य है। जबकि किसी दोषसिद्धि के खिलाफ अपील में, अपीलीय न्यायालय को निष्कर्ष और सजा को छूना आवश्यक है; दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में न्यायालय के पास कोई निष्कर्ष या सजा नहीं है, केवल दोषमुक्ति के आदेश को पलटना है और उसके बाद न्यायालय के पास आरोपी को दोषी ठहराने और कानून के अनुसार उसे सजा देने का विकल्प होता

हैं; या अभियुक्त पर दोबारा मुकदमा चलाने या उसे इस उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध करने का आदेश देना। न्यायालय के पास एक अन्य विकल्प आगे की जांच करने का निर्देश देना है। संदर्भ में पूछताछ का मतलब किसी मजिस्ट्रेट या न्यायालय [संहिता की धारा 2(जी)] द्वारा संहिता के तहत किए गए मुकदमे के अलावा हर जांच से है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि बरी किए जाने के आदेश की अपील में, अपीलीय न्यायालय कार्यवाही को पूर्व में रख सकता है- मुकदमे के चरण में और जाहिर तौर पर आरोप तय होने से पहले के चरण में लेकिन पुलिस रिपोर्ट दर्ज होने के बाद, ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है किसी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में न्यायालय में। पुनः विचारण का आदेश जिसे अपीलीय न्यायालय अपील के संदर्भ में पारित कर सकता है दोषसिद्धि उसी अपराध के लिए पुनः सुनवाई है जिसके लिए अभियुक्त है दोषी ठहराया गया था और दूसरे को नहीं क्योंकि यह उसके लिए गलत होगा अपीलीय न्यायालय यह मान ले कि पूरा मामला उसके समक्ष है। जब यह दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील पर विचार करता है, इसमें केवल अपील ही होती है दोषसिद्धि और दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील नहीं। इसमें नहीं है इसके प्रयोजनों के लिए उसके समक्ष पूरे मामले की कार्यवाही पर संदेह करना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 और उसके अंतर्गत उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय को भी परिवर्तित करने से रोक दिया गया है किसी दोषसिद्धि में दोषमुक्ति का निष्कर्ष।

(8) मौजूदा मामले में, जैसा कि पहले देखा गया था, 12 जून 1975 के डिस्चार्ज आदेश के खिलाफ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण की कोई कार्यवाही नहीं हुई थी। ऐसा लगता है कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश को इसके अस्तित्व के बारे में जानकारी नहीं थी। हालाँकि इस न्यायालय और सत्र न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत शक्तियों का प्रयोग

करने से नहीं रोका गया था और बरी करने के आदेश को रद्द नहीं किया गया था, फिर भी उस शक्ति का प्रयोग हल्के ढंग से नहीं किया गया है, बल्कि केवल असाधारण मामलों में किया गया है जहां सार्वजनिक न्याय के हित हैं किसी स्पष्ट अवैधता को सुधारने या न्याय के घोर गर्भपात को रोकने के लिए हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यह क्षेत्राधिकार, उच्च न्यायालय आमतौर पर केवल इसलिए लागू या उपयोग नहीं करता है क्योंकि निचली अदालत ने कानून के बारे में गलत दृष्टिकोण रखा है या रिकॉर्ड पर सबूतों की गलत सराहना की है। कहीं भी भारतीय दंड संहिता की धारा 467 और अन्य संबद्ध अपराधों के तहत अपराध के लिए मुक्ति के आदेश को एक सीमा के भीतर पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उचित समय पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी। यही कारण है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 अब आरोपमुक्त करने के तर्कसंगत आदेश की गारंटी देती है ताकि इसे पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती दी जा सके। इससे संतुष्ट रहने वाले राज्य को आंदोलन करने और यह दावा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के तहत आरोप तय करके आरोपी पर मुकदमा चलाना चाहिए। इस प्रकार, यह माना जाता है कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के पास किसी अन्य अपराध की सजा के आदेश के खिलाफ अपील की सुनवाई करते समय आरोप तय करने पर आरोपी पर नए सिरे से मुकदमा चलाने का आदेश देने की कोई शक्ति नहीं थी। आगे यह माना जाता है कि इस मामले में अपीलीय न्यायालय ने अपनी पुनरीक्षण शक्ति का स्वतः संज्ञान या अन्यथा प्रयोग नहीं किया, क्योंकि वह 12 जून, 1975 के आरोपमुक्ति के आदेश से अनभिज्ञ था और यह न्यायालय पुनरीक्षण का कार्य नहीं करेगा, क्योंकि यह है यह हस्तक्षेप का मामला नहीं है, खासकर निचली अदालतों में लंबी और लंबी कार्यवाही के बाद।

(9) उपरोक्त कारणों से, शुरुआत में पूछे गए प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में देना होगा।

(10) परिणामस्वरूप, इस पुनरीक्षण याचिका को अनुमति दी जाती है और जहां तक यह भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के तहत अपराध के लिए याचिकाकर्ता के नए मुकदमे के आदेश से संबंधित है, आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है, लेकिन अन्यथा भारतीय दंड संहिता की धारा 419 के तहत अपराध के लिए बरी करने के उनके आदेश को चुनौती नहीं दी गई है। तदनुसार आदेश दिया गया।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अँग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

Checked By:

Karandeep

Trainee Judicial Officer

Chandigarh Judicial Academy,

Chandigarh

